REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 14 | ISSUE - 3 | DECEMBER - 2024

दूधनाथ सिंह की कहानियों में मानवीय संवेदना

महात्मा प्रसाद सिंह
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

डॉ. प्रेमशंकर शुक्ल
विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग
एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला मऊगंज (म.प्र.)

सारांश –

आज संसार में चारों ओर दानवता का भीषण ताण्डव नृत्य हो रहा है। मानव अपनी मानवता खोकर खड़ा मुँह देख रहा है। पाखण्ड, आडम्बर, अन्याय, अत्याचार, तृष्णा, स्वार्थ, वासना आदि आसुरी वृत्तियों से उसकी क्रूरता, पशुता का स्पष्ट परिचय मिलता है। आज का सभ्य कहलाने वाला मनुष्य असुर की परिभाषा बन गया है। उसकी पशुता पग–पग पर क्रियाशील है, जिसके कारण मानवता कराह रही है। मानवतावाद के लिए मानव को भावुक व सहृदय होना आवश्यक है। जहाँ व्यक्ति में ये गुण नहीं हैं, वहाँ मानवता का उत्कर्ष प्रभावित होता है। क्योंकि मनुष्य को मानवता के कर्म में प्रवृत्त करने वाली मूल प्रवृत्ति भावात्मिका है। इसी प्रवृत्ति के द्वारा मानवता का स्वरूप निर्मित होता है। समस्त भारतीयों, मनीषियों, आलोचकों और कवियों ने इसी भावभूमि पर मानव तथा मानवता के स्वरूप को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द – पाखण्ड, आडम्बर, अन्याय, अत्याचार, तृष्णा, स्वार्थ, वासना एवं मानवीय संवेदना।

प्रस्तावना –

मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य और कौशल यही है कि वह मानवी गरिमा के साथ जुड़ी हुई विशिष्टताओं को समझे तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने का प्रयास करें। वह अपने चिन्तन और चरित्र को ऊँचा उठाये तथा जन–कल्याण की भावना को प्राथमिकता दे। निःसन्देह इससे मानवता का उत्कर्ष होगा। मानव में यह भावना तभी पनपती है, जब उसके हृदय में उदारता का समावेश होता है तथा विश्वबन्धुत्व की भावना का प्रसार बढ़ता है। इसके लिए पग–पग पर कल्याण और जनहित का ध्यान रखना पड़ता है। व्यक्ति को स्वार्थों में कटौती करनी पड़ती है तथा दुष्प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना पड़ता है। यहाँ तक पहुँचकर सम्पूर्ण प्राणियों के साथ उसका रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। विश्व के सुख–दुःख से उसका हृदय आन्दोलित होने लगता है। इसी की प्राप्ति मानवता का चरमोत्कर्ष लक्ष्य है।

सम्पूर्ण विश्व में प्राप्त होने वाली संस्कृतियों में प्राचीनतम संस्कृति भारतीय संस्कृति ही है। संसार के अन्य देश जब अज्ञानान्धकार में भटक रहे थे, उस समय आर्यावर्त के आर्य समग्र कला–कौशल में प्रवीण थे। उनका चिन्तन–मनन अत्यन्त उदात्त और उच्च था। वह आज भी मानव के आध्यात्मिक तथा लौकिक जीवन को उत्कर्ष प्रदान करने का अनन्य साधन है। उसको व्यावहारिक जीवन में उतारकर मानव विकास ही चरम सीमा

तक पहुँच सकता है। भारतीय मनीषियों तथा भारतीय संस्कृति ने मानवता को सर्वव्यापक स्थिति तक पहुँचाने का कार्य किया है। इस काल में मानवता को धर्म के रूप में अंगीकार कर उसे जीवन का अनन्न स्रोत माना गया है। आर्यों की दृष्टि में मानवता की उच्च भावभूमि है – ''आत्मनः प्रतिकूलानि न परेषां समाचरेत्'' उनकी यह भावना मानवतावाद को व्यापक आयाम प्रदान करती है।

1950 के बाद की कहानियों में क्रमशः वैयक्तिकता का दबाव बढ़ता गया। कुछ देर के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति का उल्लास आंचलिक कहानियों में अभिव्यक्त हुआ, पर वह कहानी की विकासयात्रा का अस्थायी पक्ष था। शीघ्र ही स्वतंत्रता से प्राप्त होने वाले सुख के प्रति रोमानी मोह टूट गया और व्यक्ति एक तरह के कटाव या अलगाव के कठघेरे में खड़ा हो गया। छठे दशक में जो तनाव या अलगाव आया, वह मूल्यों से पूर्णतः विच्छिन्न नहीं हुआ था, किन्तु सन् 1962 में चीन–भारत–युद्ध के समय रोमैंटिक सरकार ने हमें अंतिम रूप से मोहमुक्त कर दिया। इसीलिए मार्क्स और फ्रायड के प्रभावों से आगे बढ़ कर अस्तित्ववादी दर्शन ने जीवन के बुनियादी सवालों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया, जिससे सातवें दशक में संत्रास, अलगाव, बेगानेपन और ऊब से संबद्ध कहानियां लिखी गयीं।[1]

छठे दशक की कहानियाँ आत्मसंघर्ष और नाटकीय तनाव के कारण उनसे अलग हो जाती हैं। इस दशक की कहानियों को लेकर बहसें और आंदोलन भी कम नहीं हुए। सन् 1955 में 'कहानी' पत्रिका के प्रकाशन ने इस दौर को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योग दिया और 1956–57 में तो नयी कविता के वज़न पर इसका नाम भी 'नयी कहानी' रख दिया गया।[2]

सातवें दशक के कहानीकारों ने रोमांस–मुक्त होकर नये यथार्थ का साक्षात्कार किया। पुरानी पीढ़ी के प्रति क्षोभ–आक्रोश का शुभारंभ यहीं से हुआ। बुद्धिजीवी–वर्ग का संकट और भी गहरा था। उसकी आवाज सुनने वाला कोई भी नहीं था। पुरानी पीढ़ी से संवाद की कोई स्थिति ही नहीं रह गयी। अकेलेपन और निर्वासन का एहसास गहरा हो गया, किन्तु इनकी अपेक्षा ऊब की स्थिति अधिक उभरी। वैसे, यह स्पष्ट ही है कि अकेलेपन और निर्वासन में, जहाँ गहन रचनात्मक दृष्टिकोण है, वहाँ ऊब में विघटनात्मक और सतही विद्रोहात्मक रवैया अधिक दिखायी पड़ता है। ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल, गिरिराज किशोर, रवींद्र कालिया, महेंद्र भल्ला, ज्ञानप्रकाश, काशीनाथ सिंह आदि इस दशक के अन्य उल्लेखनीय ज्ञानरंजन अपनी वस्तुनिष्ठता, संतुलन और संयम के कारण सबसे अलग और विशिष्ट हैं। 'फेंस के इधर और उधर' में संगृहीत कहानियाँ इसकी परिचायक हैं।[3]

विश्लेषण –

दूधनाथ सिंह कृत 'रक्तपात' में कटाव, अलगाव और निर्वासन चरम सीमा पर पहुँच गया है। उनकी कहानियाँ अनायास ही इस विचार को जन्म देती हैं कि जहाँ एक समय ऐसा था, जब आदर्श चरित्र निर्मित होते थे, दूसरा समय ऐसा आया, जब प्रामाणिक चरित्र निर्मित किये जाने लगे, वहीं एक समय यह भी है, जब अभिशप्त चरित्रों की सृष्टि होने लगी है।[4] दूधनाथ सिंह ने आधुनिकता बोध की कहानियाँ लिखी हैं। इनकी कहानियों में सामान्यतः स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व के चित्र आंके गये हैं। यहाँ तक की दूधनाथ सिंह की कहानियों में सेक्स के सम्बन्ध में भी इन्हें कोई झिझक और रोमानी संकोच नहीं है। सामाजिक, राजनीतिक परिवेश में जो अराजकता की स्थिति और मून्यहीनता आने लगी थी, उसकी प्रतिक्रिया स्वातंत्र्योत्तर युगीन सातवें दशक में शुरू हो गई थी। कथाकार दूधनाथ सिंह ने अकेलेपन आदि को खारिज करते हुए कहानी कला को स्वीकारोन्मुखी बनाया। दूधनाथ सिंह की कहानियों में युवा विद्रोह की जो लहर आई उसके फलस्वरूप बेलाग और दो टूक बात करने की प्रवृत्ति को बल मिला। पुरानी व्यवस्था के विरोध में एक प्रकार का बौद्धिक राजनैतिक आन्दोलन ही चल पड़ा। इस युग के कथाकारों में दूधनाथ सिंह एक ऐसे कथाकार थे जिन्होंने कहानी की आन्तरिक संरचना और बनावट में तेजी से परिवर्तन उपस्थित किया।

दूधनाथ सिंह की कहानियों की चेतना मानव संघर्षों की नई तड़प और सूझ पैदा की है। डॉ. हरदयाल के शब्दों में – "नई पीढ़ी के कथाकारों ने परंपरा को नये बोध से समझा, ऊपर से छीला और साफ़ किया तथा उसे अपनी रचनात्मक ज़रूरतों के अनुकूल ढाल कर ग्रहण किया। उसमें नये मानव–संघर्षों की नयी तड़प और सूझ पैदा की। परिणामतः इन कहानीकारों में कई तरह की स्थितियों के प्रति आक्रोश है, खीझ है, चीख़ है, प्रश्नाकुलता है, आत्ममंथन है, आत्मालोचन है, आत्मसाक्षात्कार का निर्भय भाव है और जीवन की विद्रूपताओं,

विसंगतियों, संत्रासों, यंत्रणाओं में भी डट कर जी पाने की साहसिकता का भाव है। पिछली पीढ़ी की तरह यह तकलीफों से भागते नहीं हैं, उन्हें काबू में लाकर भोगते हैं। अब इस कहानी का स्वर अस्तित्ववादी न रह कर मानववादी हो गया है।[5]

'रेत' शीर्षक कहानी के अन्तर्गत सिलहुँत डोम, चौधरी सुरेन्द्र बहादुर सिंह से कथा का आरम्भ होता है। सिलहुँत डोम चौधरी साहब से कहता है – 'डोम–डेरवा अब नहीं रहा मालिक, ईत जनते हैं, 'सिलहुँत ने कहा, 'सब उजरि–पजरि गये। बाबू लोग मार–पीट के भगा दिये। किसकी–किसकी सिकाइत ले के आते सरकार। कहूँ सोनवाई नहीं रही। औरतन की सबसे फजिहत रही बाबू! बाकी जो बीति गयी ताके बिसारि दें। अब जो पटठे–जवान बचे रहे उन्हें साँप–कीरा बइर–मनार पत्तले के जूठ–काँठ–जब पेट–भरे के कुच्छों नहीं मिला तो देसावर भागि गये। उहाँ चोरी–चिकारी करते हैं। जेहल खटते हैं। कुछ काम–धाम करते हैं। पेट पालते हैं सरकार! अब इहाँ हमही दुइ घर मालिक की सेवा में बचे हैं। मालिक का मोह–छोह है, दया–माया है। बाकी दुइ घर में नवहा कइ ठो, ले–दे के बाप–पूत हम और एक ठो भतीज। ओतने में बाराति कइसे छनी मलिकार! सिलहुँत ने माथा जमीन पर टेक दिया।[6]

कथा लेखक ने यह स्पष्ट किया है कि डोमों के बीच विवाह रश्म किस प्रकार तय होती है? मुँड़ फुटवुअल के बाद शादी सम्बन्ध होते हैं। लाठियाँ भाजी जाती हैं। इसी कथानक का एक अंश अवलोकनीय है –

"डोम के बियाह कहसे होता है मालिक, जानते हैं न?'
'हम कइसे जानेंगे डोमराजा!' चौधरी साहेब बोले।
'जब तक कपार नहीं फाटता, सुभ–साइत नहीं आती महाराज!
'किसका कपार हो?' चौधरी साहेब ने प्रश्न किया।
'दूनों में से कौनों पारटी का।
चाहे लइकनी के बाप का, चाहे दुलहा के बाप का।
दूनों में से कौनो समधी के कपारे से रकत बहे के चाही मालिक!'[7]

सन्नाटा चाहिए कहानी के क्रम कथाकार ने यह दर्शाया है कि न्यायाधीश की पत्नी प्रतिदिन रात में रोया करती है। इस रुदन से वह काफी घबड़ाती है। न्यायाधीश के आदेश से सी.ओ. सिपाही सभी मुलाजिम रात में रोती हुई महिला की खोज में डेरा डाल देते हैं। सी.ओ. ने दरोगा और सिपाहियों से मशविरा किया। कोई डाइन कहता था। कोई किसी स्त्री के पड़िया मर जाने पर रोने की बात करता था। खोजबीन शुरू हुई। तरह–तरह के कदास लगाये जाते थे। लेखक ने मानवीय संवेदना को प्रस्तुत कहानी को घटना चक्र से जोड़ते हुए लिखा है – मेम साहब ने कराहते हुए कहा, 'मुझसे मत पूछो बाबा! मेरे आधे सिर में दर्द है। उल्टी की फ़ीलिंग हो रही है। और नीना मेम साहब को फ़ोन कर दो कि आज तीन पत्ती पर नहीं आ सकूँगी। पर्दे खींच दो, अँधेरा कर दो और मुझे लिहाफ़ उढ़ा दो। और एक साफ़ उगालदान रख दो और सावन को ले जाओ यहाँ से। या तो बिस्तरे पर चढ़ आयेगा, नहीं तो इतने ज़ोर से भौंकता है कि मेरा तो माथा फट जायेगा। उसे पीछे ले जा कर बाँधो और खिला देना। और भागो ..... अँधेरा करो जल्दी। ये कैसे पुलिस वाले हैं कि ढूँढ़ नहीं पाये! ..... बाबा, ये औरत तो मेरी जान लेकर छोड़ेगी.....।' मेम साहब बिस्तर में ढह गयीं।[8]

नपनी कहानी में लड़की देखने जाने का प्रसंग है। साथ में नपनी भी जाती है जिसे लड़की के बगल में खड़ा करके नापना चाहते हैं कि लड़की की ऊँचाई कितनी है। युगानुरूप लड़के का पिता अनेक आडम्बरों को आधार मानकर लड़की के पिता से रुपया ऐंठना चाहता है। इस प्रसंग का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

''नपनी जाकर दुल्हन के बगल में खड़ी हो गयी।
'बराबर से।' पिता जी किसी बढ़ई की तरह बोले जो सूत से सूत मिला रहा हो।
सबने देखा। पिता जी ने अपनी पत्नी, पुत्र और अधिकारी जी को।
अधिकारी जी भी मापने वाली नज़रों से देखते रहे।''[9]

रीछ कहानी के अन्तर्गत लेखक ने संकेत का शब्दों का अनायास प्रयोग किया है। जैसे वह, उसकी, ओर से, उसने, पुरुष, उसे आदि पुरुषवाचक सर्वनामों के माध्यम से अपनी कथा को अग्रगामी किया है। यथा – थोड़ी देर बाद उसने महसूस किया कि 'उसकी' ओर से कोई प्रतिरोध नहीं हो रहा है। तो शायद वह .....। तभी उसने लक्ष्य किया – 'वह' चुपचाप नीचे पड़ा हुआ उन्हीं खूनी निगाहों से उसको तक रहा था। जैसे 'उसे' कहीं भी चोट न आयी हो। वह सर्वथा निर्विकार–सा, तटस्थ, चुप और शान्त पड़ा था।[10]

मानवीय संवेदना के चित्र और चरित्र को उद्घाटित करते हुए कथाकार दूधनाथ सिंह का कथन है – "सहसा ही वह पस्त पड़ गया और जाकर तख्त पर ढह गया। उसके हटते ही वह उठा। एक बार उसने बड़े जोर की जम्भाई ली और फिर उछलकर उसके ऊपर सवार हो गया। उसे लगा, वह धीरे–धीरे डूब–सा रहा है। बेहोश हो रहा है ..... तिरोहित हो रहा है। उसने देखा कि वह दीवारों पर अँधेरे में अपनी छाप लगा रहा है। खिड़की की सलाखें पकड़ झूम रहा है। गलियों, मकानों, चौराहों, सड़कों के मोड़ों और भरे बाज़ारों में ऊँघता हुआ टहल रहा है। उसने देखा कि वह उसकी पत्नी की बगल में लेटा है .....। तभी उसके जबड़े को कसने वाला तार, शायद, टूट गया। उसे लगा कि 'उसने' उसका सिर बीच से दो टुकड़े कर दिया है। फिर उसे लगा कि 'वह' अपना थूथन, फिर पंजे और फिर धड़ उसके फटे हुए सिर के बीच घुसेड़ रहा है.....। एक भयानक चिंघाड़ उसे जैसे बहुत दूर से आती सुनाई दी.....।"[11]

'दुःस्वप्न' कहानी के माध्यम से दूधनाथ सिंह ने एक प्रसंग इस प्रकार वर्णित किया है – मैं नहीं कह सकता कि तुम्हारा इससे मनोरंजन होगा या नहीं। इतना मैं जानता हूँ कि तुम यह सब सकते में आकर सुनोगी और मुझसे कुछ आशा करोगी। कि फिर? उसके बाद? क्योंकि तुमने बावजूद मेरे मना करने के सारी औरतों की तरह मुझमें ढेर सारे आदर्शों, गुणों और नैतिकताओं की तो कल्पना कर ही रखी है .....। लेकिन मैं सच कहता हूँ। मैं इन सभी की तरह कहीं भी जा सकता हूँ – किसी वेश्यालय में, या पुस्तकालय में या रेस्त्राँ में या फ़िलहाल तुम्हारे साथ किराये के सुखद विस्तर में।[12]

'सब ठीक हो जायेगा' कहानी में मिसेज मिश्रा पहले ही चली गई थी और मिस्टर दास आफिस चले गये थे तो उन्होंने देखा शाम को एक और क़िस्सा सुनने को मिला। पता लगा, केलकर ने अपनी बीवी को खूब पीटा है। उसने अपना बाथरूम इस्तेमाल करने की अनुमति दे दी थी। इस पर बीवी ने एतरात किया तो उसने पीट दिया। शाम को जब मैं ऊपर जा रहा था, तो दो–एक लोगों के साथ वह भी मिसेज मिश्रा के कमरे में बैठा था। मुझे देखते ही उसने नजर बचा ली थी।

धीरे–धीरे केलकर की यह बैठकी नियमित हो गयी। वह अपनी बीवी को घर छोड़ आया। मुझसे उसने बोलना छोड़ दिया। कभी अगर लेक पर या गैरिया–हाट या चौरंगी में देखा–देखी हो जाती तो वह नज़रें बचाकर निकल जाता। ऑफ़िस के वक़्त पर वह बहुधा नौ नम्बर की वह बस छोड़ देता जिसमें मैं चढ़ता। फिर हम दोनों में एक मूक समझौता हो गया और हम एकदम एक–दूसरे के लिए अन–पहचाने हो गये।[13]

मिस्टर दास को गाली देने का नशा था। इस प्रसंग में मानवीय संवेदना का एक चित्र अवलोकनीय है – "शाली हमरा पाइप का जल खाकर हाथी हो गया। वह घर से भागा हुआ अउरत है। ..... हम कुछ नहीं ..... माँगता बाबा! तुम हमारा घर से अब्भी निकल जाओ। ..... इसका कोई नहीं। एक ठो आवारा, बदमाश, को साथ में रखा है। वह इसका व्यभिचार का कमाई खाता है .... थू! वह इसका कोई नहीं। हिआँ सब लोग जानता है। वह शाला कूकुर है कूकुर.....।"[14]

लेखक दूधनाथ सिंह ने मानवतावादी चेतना का एक अन्य रूप विसंगतियों के परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है – "मिसेस मिश्रा रोती हुई ऊपर छत पर भागीं। मिश्रा रोज की तरह छत पर बैठा हुआ था – जैसे उसके सामने यह सब कुछ घटित नहीं हो रहा हो। मिसेस मिश्रा ऊपर गयीं और मिश्रा के गालों पर तड़ातड़ कई तमाचे जड़ दिये। फिर गुस्से में वह उसका मुँह नोचने लगीं – "कायर, निकम्मे, भड़वे ..... यहीं सब मुझे गाली दे रहे हैं। भगायी हुई औरत कह रहे हैं। वेश्या बना रहे हैं। मेरी सारी गत बन गयी और तुम बैठे–बैठे सुन रहे हो–बेहया, दोगले .....! तुम मर क्यों नहीं जाते? तुम यहाँ बैठे कैसे हो। लानत है ऐसे मर्द पर.....।"[15]

प्रतिशोध कहानी के अन्तर्गत बच्चा नींद में सिसकियाँ लेता है, उमा माँ की भूमिका में लेटकर स्तन उसके मुँह में दे देती बच्चा एक आक्रमणकारी की तरह झपट्टा मारकर स्तन पकड़ लेता और चुहलाने लगता, उमा बार–बार उसका पेट छूती और उठने का इंतजार करती। इस प्रसंग का एक दृश्य मानवीय धारणाओं में

सृजित करती है – "सहसा सत्येन्द्र की नज़र करवट लेटी उमा पर पड़ती। ..... कूल्हे की उठी हुई हड्डियाँ और चिपके हुए नितम्ब। उसे विश्वास नहीं होता। वह चाहता कि उमा को सीधा लेटने को कह दे। वह नज़रे फेर लेता .....। कौन विश्वास करेगा कि हम भूखों .....। यह बात मन में आते ही कितनी हास्यास्पद लगती। जैसे वह दूसरों की ऐसी स्थितियों के बारे में सोच रहा हो। खुद से अलग ..... खुद के बारे में.....। फिर वे टाल जाते और सोचते अठारह तारीख को तो दे ही रहे हैं वे लोग। इन बीच के दिनों में वे जैसे नहीं हैं। अठारह तारीख को वे फिर लौट आयेंगे और अपनी शक्लों में समा जायेंगे। बीच के ये दिन पल भर में उड़न–छू हो जायें ..... और वही दिन–दिन के रूप में शुरू हो।"[16]

सपाट चेहरे वाला आदमी कथा प्रसंग में लेखक ने ऐसे परिवेश का चित्रण किया है जहाँ मानवीय चेतना मुखर हो उठती है – चीकट कपड़े की दीवार के इस ओर आने पर जो कुछ देखा तो सन्न। एक अजीब–सी दहशत मन में समाने लगी। सीली जमीन पर एक आदमी बैठा हुआ रोटियाँ निगल रहा था। उसका चेहरा एकदम सपाट था। आँख–नाक सब जगह सपाट। नीचे नथुनों से लगता था, नाक है। आँखें कहीं नहीं थीं। वह अन्धा भी नहीं था। लेकिन आँखों के गढ़े कहीं नहीं थे। ऐसा लगता था भीतर आँखें, भौंहें, बरोनियाँ सब हैं और हिल रही हैं। लेकिन ऊपर से एकदम बराबर था। सारा चेहरा सपाट।"[17]

'प्रेमकथा का अंत न कोई' कहानी संग्रह के अन्तर्गत बिस्तर शीर्षक कहानी में नीलू कहती है कि मैं अपनी हस्बी को नहीं छोड़ सकती। शफीक ने कहा कि छोड़ दो तो वह रोने लगती है और कहती है – नहीं छोड़ सकती, बस। हर बात के लिए कोई वजह थोड़े ही होती है। हब्बी है। इतने दिनों से साथ है। मर कर कमाता है बेचारा। ईमानदार है। प्यार करता है। दो बच्चे हैं जिनके बिना वह एक पल भी नहीं रह सकता। फिर आखिर वह औरत ही तो है!.... एक ममता होती है। और सब पूछो, कुमार, तो इन्सान जब एक बार मतता से बँध जाता है तो उसे तोड़ नहीं सकता–खासकर औरतें। उनकी यही सबसे बड़ी ट्रेजेडी है। वे एक संग दो को क्या, चार को, पाँच को प्यार कर सकती है और उनमें से किसी को भी छोड़ नहीं पाती। इसी विवशता में घुलती हुई मर जाती है। मेरी समझ में इसे दुश्चरित्रता कहना सबसे बड़ा अपराध है।... अब इसी को देखो। पति सब कुछ जानता है। एक–दो बार विरोध भी किया उसने, लेकिन .... अब चुप है। इससे मैंने कहा कि छोड़ दो तो रोने लगती है।"[18]

इसी कथा प्रसंग में बिस्तर कहानी के अन्तर्गत शफीक पात्र के माध्यम से एक औरत की मानवीय संवेदना इस प्रकार प्रतिपादित किया है। "शफ़ीक कह रहा था–'औरतों की यह विवशता है ... वे एक साथ दो को क्या, तीन–चार को प्यार कर सकती है और किसी को छोड़ नहीं सकतीं। यही उनकी सबसे बड़ी विवशता है .... मेरी समझ में उसे दुश्चरित्रता कहना अपराध है...। 'अपराध। विवशता.....! ट्रेजेडी.....!' उसके दिमाग में बगूले उठने लगे। औरत किसी भी स्नेह बन्धन को किसी भी समय बिना किसी हिचकिचाहट के तोड़ सकती है। अपने दिमाग का ऑपरेशन उसके लिए अति सहज है। वह किसी भी चीज को, किसी भी भयानक से भयानक और मधुर से मधुर सम्बन्ध को बिना किसी तकलीफ के तोड़ सकती है। औरतों के लिए दुनिया में कुछ भी करना उतना ही आसान है जैसे ठंडा पानी पीना। उसने सोचा, दुनिया की दीवार पर आने वाली पीढ़ियों के लिए केवल एक शब्द लिख देना क्या काफी नहीं है–'औरत'।[19]

'आज इतवार था' कहानी के अन्तर्गत पति और पत्नी के बीच रसभरी चर्चा हो रही थी। पति अखबार पढ़ रहा था। पत्नी उसे घूर रही थी। कथाकार का एक कथानक द्रष्टव्य है –

प्रेम एक दुर्लभ वस्तु है। उसे लगा, वे लोग और वे लड़कियाँ दुनिया के बारे में बेहतर जानते हैं....। फिर भी यह चीज तकलीफ़देह है। वह उदास हो गया। इस निर्मम उदासी के साथ ही उसका डर लौटने लगा। क्या सचमुच अब कुछ नहीं हो सकता? उसने उस डर को सहलाया और पहलू में दबा लिया।

पेटीकोट में उसके भारी नितम्ब थलथला रहे थे। उसकी इच्छा हुई कि बसूले से उसकी पीठ, बाँहें और नितम्ब झील दे जिससे उसका छरहरापन वापस लौट आये। नहीं, वह इस तरह खत्म नहीं होगा। कुछ करना चाहिए। इस तरह धीरे–धीरे विनष्ट होने से बचना चाहिए। सम्भव है कुछ हो जाय। उसने अखबार एक ओर रख दिया और गुनगुनाने लगा। फिर उसने आवाज में रस घोलते हुए कहा कि इस इतवार को वे छुट्टी की तरह बितायें। पत्नी जैसे नींद से जागी, फिर चौंकी, और फिर एक बड़ा सा 'हुँह' करके मशगूल हो गयी।[20]

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे के कथा प्रसंग में शिक महतो द्वारा खरीदी गई औरत के मानसिक वेदना के रूप मानवीय चेतना का चित्रण करते हुए लिखा है – अरे, तूँ का मरद नहीं है? अपनी अम्मा का दुद्धू पीता है? चाहे

बेंच–कीन के ही सही, हम तेरी घरवाली बन के आयी थीं। और तूँ देखता रहा? निकल जाने देता। हम चलीं जातीं। कतहूँ नदी–इनार फान जातीं। बाकी, तूँ तो सच्चा भँडुआ है। उस हरामी के कहे से हमें ई जंगल–झार में सींकड़ से छाने है। हम कौनों जनावर हैं कि भागि जाते? और फिर पेट में नौ महीने का बागड़–बिल्ला ले के, का हम रेल बन जाते? कि हवाई–जहाज बन जाते? का बन जाते? कि उड़नछू हो जाते? बोले?" औरत एक सुर से बोले जा रही थी।[21]

इसी कथा प्रसंग में ऐसे भाई बाप है जो बेटियों का विवाह नहीं रचा सकते, भूँख और वस्त्र से बेहाल है, ऊपर से जमींदारों के कर्ज़ के बोझ से दबे हैं। इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए शिउ महतो कहता है – वह पुन्न का काम करता है। वह औरतों का उद्धार करता है, तरन–तारन करता है। ऐसे माई–बाप, जो अपनी बेटियों का बियाह नहीं रचा सकते, जो पाई–पाई के मुहताज हैं, जिनके पेट के लाले पड़े हैं, जिनके तन पर बस्तर नहीं है, जो हरामी जमीदारों के कर्जे में है–उनकी वह मदत करता है।[22]

हुँडार कहानी आडम्बर युक्त गाथा का पुलिंदा है, जिसमें स्त्री का वेदनात्मक स्वर चरम उत्कर्ष पर पहुँच चुका है। धोबिन दरोगा से विनती करती हुई कहती है – 'बड़ा नेता बना फिरता है। बड़े–बड़े लोग आते हैं,' औरत हमारी ओर मुड़ी, 'मुझे लाया था साहब जी, मेरे भाइयों से माँगकर लाया था। कहता था घर में भरा–पुरा परिवार है। बहूजी हैं। बीमार रहती हैं। उनकी मदत कर देना। कपड़े नहीं धो सकतीं। अँगुलियों में बाई है। घुटने मोड़कर बैठ नहीं पातीं। पैसा–खाना–रहना–सब मिलेगा। भाई लोग कसाई हैं साहब जी! बेबात थुर देत रहे। भूखी रहत रहूँ साहब जी। तिस पर से काम दिन–रात लेत रहें। सो, भलमनई जान के चली आयी साहब जी। अब कोऊ के मुँह पर तो लिखा नहीं रहत। बहूजी बहुत अच्छी हैं साहब जी। बिल्कुल गऊ। लेकिन बहूजी के गाँव जाते ही दहिजरा का मन बदलिगा। जइसे तके रहा साहब जी! बाथरूम में कपड़ा फींचत रहों तो जा के पीछे से पकरि लीस। हम धक्का दियों साहब तो गिर गवा। टाँग में मोंच के बहाना बना लीस। हों सोचों कि बहूजी आयेंगी तो हमी को कलंक लगेगा। सो, हमका दया आइ गयी साहब जी! हमसे मालिस करवाइस... और जबर्दस्ती कीस।.... पूरा हुँडार है साहब जी! आदमी के कौनो लच्छन नहीं ओके भीतर।[23]

इसी कथा प्रसंग में धोबिन आगे कहती है – अब मैं औरत जात ... घर से निकारी गयी, भाई–बन्द से निकारी गयी ... हम चिल्ला भी न सकी साहब जी! कि हमें ही लोग कहेंगे ..... कलंक तो मेरे ही माथे हैं, वह सुसुकने लगी, 'मरद ने छोड़ दिया साहब जी, साफ–सूफ रहती थी तो उसे मान देना चाहिए था। उल्टे सक करने लगा। कहा, घाट पर मर्दों से आँख लड़ाती है। अब गोबर भी लपेट लो तो सक का तो कोऊ इलाज है साहब जी?.... हमार बच्चा लेइ लिहिस। मैं बन–बन भटकों साहब जी, सीता जी हो गयी। तभी यह राच्छस मिल गवा.... ।[24]

इतना ही नहीं वह आगे कहती है – हम कहों–हम चिल्ला देबै... तो हमार मुँह दबा देत रहा। हम कहौं–कुछ हो–होआ जाइ तो कहूँ के न रहब–तो हँसत रहा। तब साहब जी, कल रात हम आजिज आ के कहा कि, 'आप नहीं मनतें तो बहूजी के आये पर हम सब बात उनसे कहि देबैं .... बस साहब जी, इहे सुनते बलबलाने लगा। हमका खूब लथेरिस। इ देखें साहब जी!' औरत ने पीठ उघारी, 'आपका डंडा अऊर ओकर डंडा अलग–अलग लखि लें। आपका घाव ताजा है .....। और ओहू से मन न भरा त हम पे चोरी के इलजाम धइ दिहिस।[25]

जार्जमेकवान कहानी के माध्यम से लेखक ने यह संकेत दिया है कि – जार्ज ने एक खौरहे कुत्ते की जिन्दगी जी है। ये लोग जो फैशन में पहनते है न, ... वह भी जॉर्ज के लिए एक नियामत होती। वो .... तुमने भिखमंगे, अधपागल देखे हैं न! ..... लुगड़े, कागज, रद्दी की गठरियाँ जतन से सहेजते हुए। देखा है न!.... किसी पेड़ के नीचे निस्पृह, निर्विरोध बैठे हुए....। दुनियाँ को एक गैरपहचान में बदलने वाली उनकी नजर को देखा है न!.... बस, वही है जॉर्ज। वैसे ही थे। उनकी कला चीथड़ों का वही बण्डल उठाये हुए है, जो दिल्ली, बड़ौदा और मुम्बई में चारों ओर फैले हैं। जॉर्ज एक सचमुच के आदमी हैं। जॉर्ज लत्ते में बिखरी, फुटही जिन्दगी का चित्र रचते हैं। इसीलिए उनके रंग भी फुटहे, धुँआए और अन्तर्विरोधी हैं। उनमें एक असंगत विस्फोट है, जिसे देखकर कला–जगत के सवर्ण चोर मुँह बनाते हैं।[26]

जोशी जी अपने मित्र के साथ कला विथियों का अनुभव ग्रहण करने के लिए जाते हैं। इसी कथा प्रसंग में मानवीय चेतना का भाव इस प्रकार अभिव्यंजित हुआ है। यह विश्वासघात है उस आदमी के साथ ..... जो फँसा हुआ है, जो अपनी लत्ता–जिन्दगी की गठरी बनाये किसी पेड़ के नीचे बैठा हुआ आपकी लूटपाट और

आपकी नफीस बड़बोली का तमाशा देख रहा है। उसके साथ .... सारी कुलबुलाती अँतड़ियों वाली दुनियाँ के साथ यह बद्इन्साफी है। .... तो हम यह जानते हैं और अपने उसूलों से बँधे हैं। यह भी एक वजह है। खाली ऐसे ही हम उस तख्ती के सामने नहीं रुके थे।[27]

माई का शोकगीत शीर्षक कहानी के कथा प्रसंग में मानवीय चेतना का विवेचन मनिया के माध्यम से अभिव्यक्त है। यथा – नींद और सपन के बीच जिसे वे अपनी औरत की रोवाई समझते हैं वह सचमुच में जाँते का गीत होता है। घुरघुराता हुआ जाँता चल रहा होता है और कनियाँ बिल्कुल झीनी–सी चींटी की आवाज में गाये जा रही हैं। साँझ को पिसान नहीं होता है। कनियाँ का सरीर ठीक नहीं होता है। और यह सोचकर कि डाली में एक जून का पिसान होगा, वे दिन में नहीं पीसती है। साँझ को रोटी कम पड़ जाती है और इसी बात पर तकरार बढ़ जाती है। सो, जो कई दिनों से कनियाँ बचती चली आ रही हैं–फिर धुन दी जाती है। कइसे? जइसे फँट–फँट रुई धुनी जाती है।'[28]

दूधनाथ सिंह स्वातंत्र्योत्तर युगीन हिन्दी कहानी के अभिनव कथाकार हैं। उनकी कहानी के नित बदलते तेवरों को देखते हुए डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि "आज की कहानी जीवन की जटिलता तथा संकुलता को अभिव्यक्ति देने का सशक्त माध्यम बन रही है। इसलिए इसने शिल्प के पुराने चौखटों को तोड़ दिया है। यह अपनी बलवत्ता और विविधता में नए से नए चिंतन को आत्मसात कर रही है। आधुनिकता से साक्षात्कार कर रही है। इसलिए शायद बार–बार इसे नया नाम और रूप धारण करना पड़ रहा है।[29]

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दूधनाथ सिंह की कहानी में विसंगति बोध, संत्रास, अकेलेपन, टूटन, मृत्युबोध, लिजलिजेपन का रूप आज के जीवन के यथार्थ के रूप में उपस्थित है। इनकी प्रायः कहानियाँ अस्तित्वबोध एवं मानव पीड़ा को व्यक्त करती हैं। भयावह यथार्थ इनमें स्पष्ट है। इनकी कहानियों में रोजमर्रा की जिंदगी के कुछ सहज संदर्भ और संवेदनाएँ उभर कर उपस्थित हैं। इनके कथा प्रसंगों में विश्रृंखल कथाओं की एक श्रृंखला दृष्टिगोचर होती है। उनकी कहानियों में मानवीय संवेदना प्रायः नगरीय और ग्रामीण उभय परिवेश में प्रस्तुत हुआ है।

संदर्भ –

[1] डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 728
[2] डॉ. नगेन्द्र – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 730.
[3] डॉ. हरदयाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 734
[4] डॉ. हरदयाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 733–734
[5] डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 735–736
[6] दूधनाथ सिंह – धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे–रेत, पृष्ठ 27
[7] दूधनाथ सिंह – धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे–रेत, पृष्ठ 27
[8] दूधनाथ सिंह – धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे–सन्नाटा चाहिए, पृष्ठ 42
[9] दूधनाथ सिंह – धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे–नपनी, पृष्ठ 63
[10] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–रीछ, पृष्ठ 38
[11] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–रीछ, पृष्ठ 38.
[12] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–दुःस्वप्न, पृष्ठ 53
[13] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–सब ठीक हो जायेगा, पृष्ठ 68
[14] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–सब ठीक हो जायेगा, पृष्ठ 74
[15] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–सब ठीक हो जायेगा, पृष्ठ 74.
[16] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी–प्रतिशोध, पृष्ठ 94–95

[17] दूधनाथ सिंह – सपाट चेहरे वाला आदमी, पृष्ठ 179
[18] दूधनाथ सिंह – प्रेम का अन्त न कोई–बिस्तर, पृष्ठ 48
[19] दूधनाथ सिंह – प्रेम का अन्त न कोई–बिस्तर, पृष्ठ 60
[20] दूधनाथ सिंह – प्रेम कथा का अन्त न कोई–आज इतवार था, पृष्ठ 102–103
[21] दूधनाथ सिंह – कथा–समग्र–धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, पृष्ठ 344
[22] दूधनाथ सिंह – कथा–समग्र–धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे, पृष्ठ 348.
[23] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत–हुँडार, पृष्ठ 28–29
[24] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत–हुँडार, पृष्ठ 29.
[25] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत–हुँडार, पृष्ठ 29
[26] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत–जॉर्ज मेकवान, पृष्ठ 32
[27] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत–जॉर्ज मेकवान, पृष्ठ 33
[28] दूधनाथ सिंह – माई का शोक गीत, पृष्ठ 82
[29] हुकुम चन्द राजपाल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 421